

श्रीकृष्णायनमः
श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः
श्रीमदाचार्यचरणकमलभ्यो नमः

तत्त्वार्थदीपनिबन्ध

व्रजभाषा टीका

शास्त्रार्थ प्रकरण

सर्वोद्धारप्रयत्नात्मा कृष्णः प्रादुर्बभूव ह।
तथात्वं येन संसिध्येत् तदर्थं व्यास उक्तवान्॥१॥
श्रीभागवतमत्यन्तं सर्वेषां सुखदायकम्।
तस्याऽपि तत्त्वं येनैव सिध्येदिति विचार्य हि॥२॥
अग्निश्वकार तत्त्वार्थदीपं भागवते महत्।
तत्त्वापि येन संसिध्येद् व्याख्यानं तन्निरूप्यते॥३॥

श्रीभागवततत्वार्थ प्रकटीकरित्यन् प्रथमं शास्त्रार्थोपनिबन्धनलक्षणं मङ्गलम् आचरति नम इति.

नमो भगवते तस्मै कृष्णायाऽद्वृतकर्मणे।

भगवति जीवैः नमनमेव कर्तव्यं, न अधिकं शक्यम् इति सिद्धान्तः. “किमासनं ते गरुडासनाय किं भूषणं कौस्तुभभूषणाय, लक्ष्मीकलत्राय किमस्ति देयं वागीश किं ते वचनीयमस्ति” इत्यादिवाक्यैः परमकाष्ठापन्नं वस्तु नमस्यत्वेन निर्दिशति भगवत इति. पुरुषोत्तमाय इति अर्थः. तत्सिद्धये लोकवेदप्रसिद्धिम् आह तस्मै इति. मतभेदेन तस्य अन्यथाकल्पनाव्यावृत्यर्थम् आह कृष्णाय इति. सएव परमकाष्ठापन्नः कदाचित् जगदुद्धारार्थम् अखण्डः पूर्णएव प्रादुर्भूतः ‘कृष्ण’ इति उच्यते.

ननु पूर्वं साधनानि सिद्धान्येव सर्वत्र, तत्र अनधिकारेण साधनाभावे भगवानपि अवतीर्य किं करिष्यति? इति आशङ्कायाम् आह अद्वृतकर्मणे इति. भगवतः अद्वृतकर्मत्वम् अग्रे व्युत्पाद्यम् “असाधनं साधनं करोति” इत्यादि.

एवं साक्षाद्द्वगवत्वे हेतुम् उक्त्वा तस्य लीलाम् आह रूप इति.

रूपनामविभेदेन जगत्क्रीडति यो यतः॥१॥

रूपनामविभेदेन यः क्रीडति, रूपनामविभेदेन यो जगत्, रूपनामविभेदेन यतो जगद् इति. अनेन क्रीडायां स्वातन्त्र्यम् उक्तम्. निर्लेपत्वाय आह एतादृशं जगद् यतः इति. एवं ज्ञानेन मुच्यन्ते इति सङ्घेपः॥२॥

‘सुलोचन’ व्रजभाषा टीका

परब्रह्म पुरुषोत्तम श्रीकृष्णचन्द्रने सबनके उद्धार करिवेकु अपनो निजस्वरूप प्रकट कियो तथा आगे होयवेवारे जीवनको उद्धार करिवेकु महर्षि वेदव्यास कृष्णद्वैपायनजीके मुखद्वारा श्रीभागवतस्वरूपसों आप प्रगट भये. सो श्रीभागवतस्वरूप सब जीवनकु अत्यन्त सुखदायक हे. परन्तु श्रीमद्भागवतको ठीक-ठीक अर्थ कलिकालसों मलिनबुद्धिवारे जीव नाहीं जान सके हें ये विचारिके ठीक-ठीक अर्थ जनायवेकु श्रीकृष्णके मुखाग्ररूप श्रीवल्लभाचार्यजीने ‘तत्त्वार्थदीप’नामको ग्रन्थ रच्यो तथा वाकु भी स्पष्ट करिवेकु ‘प्रकाश’नामसों प्रसिद्ध व्याख्यान भी आपनें ही बनायो. वा व्याख्यानकु भी स्पष्ट करिवे अर्थ

आचार्यकुलभूषण श्रीपुरुषोत्तमजी महाराजने ‘आवरणभङ्ग’नामसों प्रसिद्ध व्याख्यान बनायो. साधारण भाषा जानिवे वारे बालकन्कु सुगम रीतिसों समुझायवके अर्थ अन्वयक्रमकु छोडिके निबन्ध एवं आवरणभङ्गके तात्पर्यको सङ्घेपसों या भषाग्रन्थमें वर्णन कियो हे.

श्रीवल्लभाचार्यजी ग्रन्थके प्रारम्भमें मङ्गलाचरण करे हें एवं या मङ्गलाचरणमें ही सङ्घेपसों वेद-गीता-व्याससूत्र-श्रीभागवतको सिद्धान्त भी वर्णन करे हें. नमो भगवते इति . भगवानने जीवनकुं सर्व पुरुषार्थ दिये हें ताके प्रत्युपकारमें जीवनके आडीसूं भगवान्के अर्थ नमस्कार ही होय सके हें याके सिवाय भगवान्को प्रत्युपकार कछू भी जीव नाहीं करि सके हे-ये शास्त्रको सिद्धान्त हे. शास्त्रमें लिख्यो हे “जिनके गरुडजी आसन बैठवेकु हे, कौस्तुभ मणि भूषण-अलङ्कार जिनको हे, लक्ष्मीजी जिनके स्त्री हें तथा जो रूब्यं वाणीके पति हें तिनको आसन, आभूषण, धन, रूक्षति आदि द्वारा जीव कहा सत्कार करेगो”. या प्रकारके बहुतसे वाक्य हें. तासों जीवनकुं नमस्कार करिवे योग्य सबसों बडे देव पुरुषोत्तमही हें. पुरुषोत्तम वो ही हे जो वेदमें लोकमें प्रसीद्ध होय. अनेक वादीजनन्में अपने-अपने मतमें पुरुषोत्तम कछु अन्य ही मान राख्यो हे परन्तु यथार्थ विचार कियो जाय तो कृष्ण ही पुरुषोत्तम हें. सबसे बडेसों भी बडो परब्रह्म जाकु कहे हें वो ही जगत्को उद्धार करिवेकों अखण्ड पूर्णरूपसों, जितनो हे उत्तोही, समग्र प्रकट भयो तब ‘कृष्ण’ कहायो. यहां ‘कृष्ण’ शब्द परब्रह्मको वाचक हे. “यस्मात् क्षरमतीतोहम् अक्षरादपि चोत्तमः, अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः” अर्थ : हे अर्जुन १.क्षर जो सम्पूर्ण भूत एवं २.अक्षरब्रह्म जाकी ज्ञानी उपासना करे हे-इन दोनोन्सों में उत्तम हुं. एवं लोक-वेदमें ‘पुरुषोत्तम’ नामसों प्रसिद्ध हुं. तथा भागवतमें “कृष्णस्तु भगवान् रूब्यम्” या श्लोकमें भी लिखे हें.

जेसे राजा अपने पुत्रनमें लडाई देखे हे तब रूब्यं आपके क्रूर रूब्यभाव वारे पुत्रनकुं दूर करिके शान्त रूब्यभाव वारे भोले-भोले पुत्रनकुं अपने समीप राखे हे एसें ही दैवजीव हें सो भगवानके शान्तरूप हें आसुर जीव हें सो भगवानके अशान्तरूप हें. जब अशान्त आसुरजीव शान्त रूब्यभाव वारे सूधे दैवजीवनकुं अत्यन्त दुःख देवे लगे हें तब पुरुषोत्तम अत्यन्त करुणा करिके रूब्यं पूर्ण अखण्डरूपसों ही वितने देशकी माया दूर करिके वेसें ही प्रकट होय हें जेसे काष्ठके घिसवेसों विना अग्नि लाये काष्ठमेसों ही अग्नि प्रकट हो जाय हे. तासों केवल धर्म रक्षाके ही अर्थ पुरुषोत्तम अवतार नाहीं हे. क्योंकि धर्म रक्षा तो अंशावतारद्वारा भी कर सके हें. परन्तु जब सूर्यको उदय होवे हे तब दीपककी आवश्यकता नाहीं रहत हे क्योंकि दियाके कामकु सूर्य ही करि देत हे या ही रीति सों जब कृष्ण परब्रह्म प्रकट भये तब अंशावतारके भी कार्य आप द्वारा ही है गये. तासों कितनेके मनुष्यनकुं अंशके कार्य देखिके कृष्णमें अंशावतारको धोखा हो जावे हे. सो ये मोह इन्द्रादिकन्कों भी भयो हतो. तब भगवान्ने गोवर्द्धन धारणादि लीलाकरिकें उनको अज्ञान दूर कर्यो हतो. और तो कहा वसुदेवजी भी एक समयमें नारदादिक क्रष्णिसों अपनो कल्याण होयवेको उपाय पूछवे लगे हते तब नारदजीने कही “हे वसुदेवजी हम सब क्रष्णि लोग अपनो कल्याण अर्थ जा कृष्णके दर्शन करिवेकों आवे हें वे पूर्ण ब्रह्म कृष्ण तुम्हारे पुत्र भावकुं प्राप्त होयके सर्वदा समीप रहे हें. तुम्हारो सदा कल्याण ही होय रह्यो हे” इत्यादि. तथा गीतामें श्रीकृष्णनेही रूब्यं आज्ञा करी हे “अवजानन्ति मां मूढा मानुषींतनुमात्रितम्”. अर्थात् अज्ञानी मनुष्य मेरे सदानन्द मूर्तिरूप परम भावको नाहीं जाने हें तासों मोकुं वे अज्ञानी लोग मेरे शरीरकु भी अन्य मनुष्यनके शरीरन्की तरह रुधिर-मांसादिकन्को बन्यो जाने हें. इत्यादि शतशः वाक्यन्सों श्रीकृष्णको रूबरूप आनन्दरूप ही हे. तथा आपके गुण-कर्म-रूब्यभाव भी आनन्दरूप ही हें. जेसे दियाको प्रकाश दियासों अलग नाहीं होवे हे एसे गुण-कर्म-रूब्यभाव भी भगवानसों न्यारे नाहीं हें. कहीं-कहीं अंशावतारमें ‘कृष्ण’शब्दको प्रयोग आवे हे तहां गौण समुझनो. मुख्य ‘कृष्ण’नाम उनको ही हे जो रूब्यं कृपा करिके जगत्को विना साधन उद्धार करिवेके अर्थ आप्तकाम अखण्ड पूर्ण परब्रह्म अग्निकी तरह माया दूर करिके अपनो रूप दिखावे हें. यद्यपि अंश-कलावतार भी उद्धार करे हें परन्तु धर्मादि साधन बतायेके उनके द्वारा उद्धार करे हें. क्योंकि गीतामें लिखे हें “धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे”. यामें युगावतारको धर्मस्थापन मात्र प्रयोजन लिख्यो हे. पूर्ण ब्रह्म श्रीकृष्णचन्द्र तो अद्भुत कर्म करिवेवारे हें. काम क्रोधादिक जो मोक्षके साधन नाहीं हें उनकुं भी साधन बनायके अपने अलौकिक सामर्थ्य करिकें गोप, गोपी, कंस, गो, मृग, पशु, पक्षी आदिको उद्धार कियो. श्रीकृष्ण जो परब्रह्म नाहीं होते तो विनासाधन ज्ञानरहित जीवन्को उद्धार नाहीं करि सकते. यद्यपि कितनेक लोग कर्मकुं ही ईश्वर माने हें.

कितनेक ईश्वरकों नाहीं माने हें. वे लोग कहे हें : पदार्थनके स्वभावसों ही जगत्‌को उत्पत्ति-नाश होतो जावे हे. उनके मतमें स्वभावही गुप्त रीतिसों ईश्वर भयो. ओर तो कहा कारू लोग भी विश्वकर्माकों ही ईश्वर मानत हें. ओर सब ही अपने-अपने ईश्वरकों नित्य-शुद्ध-बुद्धस्वरूपही माने हें ये बात कुसुमाङ्गलिविवेकमें उदयनाचार्यने भी लिखी हे. परन्तु ये ईश्वरके एक-एक देशके मानिवेवारे हें. जेसे बहुत अध्ये पुरुष हाथीके पास जावे हें तब कोईके हाथमें हाथीकी सूड़ आवे हे वो वाही घाटको हाथीकु जाने हे. जाके हाथमें पांव आवे हे वो हाथीको मोटो थम्भा जेसो जाने हे, जाके हाथमें पूँछ आवे हे वो लम्बो डण्डा जेसो जाने हे या रीतिसों एक-एक अङ्गाङुं हाथी मान बेठे हें. समग्र हाथीकों नाहीं जाने हें. याही प्रकार परमात्माके एक-एक देशकों यथाशक्ति ऋषि आदिक वर्णन करे हें. वेदमें सृष्टि करनो ब्रह्मको लक्षण लिख्यो हे ताको वर्णन करे हें.

रूपनाम इति. रूप-नामके भेद करिके जो क्रीडा करे हे, रूप-नामके भेद करिके जो जगत् बन जावे हे, रूप-नामके भेद करिके जासों जगत् प्रकट होवे हे अर्थात्; जगत्‌में जितने पदार्थ हें उन सबनको रूप बनायके तथा उनके नाम भी बनायके रूप तथा नामके भेदसों श्रीकृष्ण ही क्रीडा कर रहे हें. पदार्थ स्वरूप तथा शब्द स्वरूप दो प्रकारको जगत् हे सो भी आप ही भये हें. अर्थात् कार्य भी आप ही हें. मृत्तिकासों जेसे घट बने हे एसें नाम तथा अर्थ रूप करिके आपसों जगत् बन्यो हे. जगत्‌के उपादानकारण भी आप ही हें. अपने स्वरूपके सिवाय क्रीडामें अन्य कोई पदार्थकी अपेक्षा नाहीं हे. अर्थात् क्रीडाके पदार्थ तथा क्रीडा करिवेवारे आप ही स्वयं हें. या ही सों आप अपनी क्रीडामें परम स्वतन्त्र हें. आप श्रीभगवान्‌के सिवाय कोई पदार्थ नाहीं हे जामें आप आसक्त होंय. यासों आप निर्लेप हें. या रीतिके (भगवत्स्वरूपके) ज्ञानसों मोक्ष होवे हे. ये ही सर्वशास्त्रनको निचोड हे. श्रीवल्लभाचार्यजी ग्रन्थके आदिमें एसी लीला करिवे वारे श्रीकृष्णचन्द्रकों नमस्कार करे हें॥१॥

विस्तरेण वक्तुं प्रतमतः अधिकारिणम् आह सात्त्विका इति.

सात्त्विका भगवद्वक्ताः ये मुक्तावधिकारिणः॥

भवान्तसंभवा दैवात् तेषामर्थं निरूप्यते॥२॥

स्वभावप्रकृत्यपेक्षया अधिकं विहितम् अलौकिकं ये कुर्वन्ति ते सात्त्विकाः.. तत्रापि भगवत्सेवकाः सेवापराः.. तत्रापि ये निष्कामाः.. तएव मुक्ताधिकारिणः.. तत्रापि ईश्वरेच्छया अन्तिमजन्मनि जाताः शरीरं गृहीतवन्तः.. तेषां यथा अन्तिमत्वं सिद्धयति तथा उपायो निरूप्यते इति अर्थः॥२॥

मुक्तिके अधिकारी जीवको स्वरूप कहे हें. जे जीव अपने स्वभाव तथा आचरणसों भी अधिक शास्त्रोक्त अलौकिक कार्यकुं करते रहें, भगवत्सेवामें परायण रहें, कोई कामना नाहिं राखें, भगवान्‌की इच्छा करके अन्तिम जन्म जिनको भयो होय, अर्थात् जिन जीवन्कुं भगवान् आणे जन्म नाहीं दियो चाहें-एसे जीव मुक्तिके अधिकारी हें. श्रीवल्लभाचार्यजी या ग्रन्थमें एसो उपाय वर्णन करे हें जाके करिवेसों फिर जीवको जन्म न होय.

तात्पर्य ये हे आछी रीतिसों कह्यो भयो भी सिद्धान्त अधिकारीके हृदयमें स्थिर नहीं होवे हे. याहीसों व्याससूत्रनमें तथा भागवतादिकनमें अधिकारीके लक्षण वर्णन करे हें तथा गीताजीमें “इदं ते नातपस्काय” इत्यादि श्लोकनमें अनधिकारीकुं ज्ञान देवेको निषेध लिख्यो हे तेसें यहां भी सात्त्विक अधिकारीनके अभिमत लक्षण वर्णन करे हें. देवतानको यजन-पूजन करनो सात्त्विक जीवन्को स्वभावकार्य हे. वाकी अपेक्षा भी अधिक अच्छे कार्यकुं करे. अर्थात् १करे कर्मनकुं भगवान्‌के अर्पण करते रहे तथा जहां सत्पुरुष इकट्ठे होयके भगवान्‌के पराक्रमकुं जतायवेवारी तथा हृदयकर्णनकुं रसदेवेवारी भगवत्कथा वर्णन करते रहें य वहां जायके २भगवत्कथाकुं सर्वदा सुनते भये प्रशंसा करते रहें तथा द्रव्य-देह करके भगवत्सेवा करते रहें तथा इजिनके हृदयमें कोई कामना नाहीं होय-कामना हे सो अधिकारीको दोष हे अर्थात् जा पुरुषमें बुद्धि, आयुष्य, दोषनको अभाव-ये तीनों वस्तु होंय वाकु अधिकारी समुद्दिनो. इतने गुण होंय ओर भगवान्‌की भी जा जीवको शीघ्र उद्धार करिवेकी इच्छा होय; केवल गुरुरूपी पार लगायवेवारे विना जा जीवकी मनुष्यदेहरूपी नाव संसारसागरके पार नहीं लागती होय; एसे जीवकी भगवान्‌में द्रढ आसक्ति सम्पादन करिके शीघ्र उद्धार करिवेके अर्थ श्रीआचार्यचरणनमें ये ग्रन्थ प्रकट कियो हे॥२॥

वक्ता स्वस्य तादृशज्ञानप्राप्तौ प्रकारम् आह भगवच्छास्त्रमाज्ञाय इति.

भगवच्छास्त्रमाज्ञाय विचार्य च पुनः पुनः ॥

यदुक्तं हरिणा पश्चात् सन्देहविनिवृत्तये ॥३॥

अन्यथा अनाप्तत्वं स्वात्. भगवच्छास्त्रं भागवतं, गीता, पञ्चरात्रज्य इति. तस्य सर्वतो ज्ञानम्. भगवत्कृपादिना इति शेषः. तथापि आपाततः प्रतिपत्तं न प्रमाणमिति विचारम् आह पुनः पुनः निश्चयानन्तरमपि. ननु शतशोऽपि विचारितं जीवबुद्ध्या अप्रमाणं कदाचिद् भवतीति तदर्थम् आह यदुक्तम् इति. हरिणा सर्वदुःखहर्त्रा श्रीजगन्नाथेन श्रीपुरुषोत्तमस्थितेन मोहकसर्वशास्त्रोत्पत्यनन्तरं यन्निर्धारकवाक्यम् उक्तं तदपि ज्ञात्वा इति ॥३॥

श्रीवल्लभाचार्यजी आज्ञा करे हें : हमने श्रीगीताजी, भागवत, नारदपंचरात्र इनको अर्थ भगवत्कृपा करिके आछी रीतिसुं जान्यो. फिर वारंवार विचार करिके तात्पर्यको निश्चय भी कियो. तदुपरान्त मोहकशास्त्र देखवेसें जे जीवन्कों अनेक प्रकारके संदेह भये तिनके दूरि करिवेके अर्थ श्रीजगन्नाथरायजीनें जो वचनामृत आज्ञा कियो वाके उपर द्रष्ट विश्वास राखिके तथा दैवी जीवन्कुं भी ये सिद्धान्त जतायवेके अर्थ या ग्रन्थकु प्रकट करे हें ॥३॥

तदेव आह एकं शास्त्रम् इति.

एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतम् एको देवो देवकीपुत्रएव ॥

मन्त्रोऽप्येकस्त्रस्य नामानि यानि कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा ॥४॥

अत्र आख्यायिका पारम्पर्यादेव अवगन्तव्या. देवकीपुत्रेण गीतं गीता. गीतायां भगवद्वाक्यान्येव शास्त्रम् इति अर्थः. वेदानामपि तदुक्तप्रकारेणैव अर्थनिर्णयः. उपास्यनिर्धारम् आह एको देवो इति. मूलभूतो अयम् इति अर्थः. सर्वदा स्वरणार्थं साधनम् आह मन्त्रोऽप्येकः इति. कर्तव्यम् आह तस्य इति. न मनुष्यत्वेन ज्ञातव्यः इति आह देव इति. सेवैव कर्तव्या. शास्त्रम् अवगत्य मनोवगदेहैः कृष्णः सेव्यः इति अर्थः ॥४॥

श्रीजगन्नाथरायजीनें जो “एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतम्” इत्यादि श्लोक आज्ञा कियो हे ताकी कथा या रीतिसों प्रसिद्ध हे. मायावादी तथा ब्रह्मवादी दोनों उत्कलदेशके राजाकी सभामें विवाद करिवे लगे.

विवाद करते सात दिन होय गये परन्तु कोइको भी जय नाहीं भयो. तब ये निश्चय भयो जो श्रीजगन्नाथरायजीके मन्दिरमें प्रश्न लिखिके पत्र धर देनों चहिये. तब वा ही दिन सायंकालके समय चार प्रश्न एक पत्रमें लिखिके सबन्के समक्ष मन्दिरमें पत्र धरि दियो. प्रातःकाल वा पत्रमें एक श्लोक लिख्यो निकस्यो. सो श्लोक “एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतम्” इत्यादि मूलमें लिख्यो हे. ताको अर्थ. देवकी पुत्र श्रीकृष्णकी आज्ञा करी जो गीता हे वो ही एक शास्त्र हे. देवकीपुत्र श्रीकृष्ण ही एक देव हें. देवकीपुत्र श्रीकृष्णके जितने नाम हें वे ही मन्त्र हें. देवकीपुत्र श्रीकृष्णकी सेवा हे वो ही कर्म हे.

या श्लोकमें चारों प्रश्नन्को उत्तर लिख्यो आय गयो. सभासदन्नें या उत्तरकुं मानि लियो परन्तु मायावादीन्ने कही जो ये श्लोक तो तुमारो बनायो भयो हे. तब तो राजाने वा दिन मायावादीके ही आगें वार्ने कही वा रीतिसों पत्र मन्दिरमें घरके वाके समक्ष कपाट बन्ध किये. प्रातःकाल मायावादीके ही आगें कपाट खोले. पत्र मायावादीके आगें ही लायके बांच्यो. वामें ये श्लोक निकस्यो “यः पुमान् पितरं द्वेष्टि तं विद्यादन्त्यरेतसम्, यः पुमान् श्रीहरिं द्वेष्टि तं विद्यादन्त्यरेतसम्”. अर्थ : जो पुरुष पिताके साथ द्वेष करे हे वाकुं अन्यके वीर्यसों पैदा भयो जाननों. जो पुरुष श्रीहरिसों द्वेष करे हे वाकुं नीचवर्णके वीर्यसों उत्पन्न भयो जाननों. श्लोक सुनत ही मायावादी तो लज्जित ह्वे गयो. राजाने मायावादीकी माताकुं बडो भय देके पूछी तब वानें कही जो “म्लेच्छ धोबीसों मेरे गर्भ रहि गयो हतो”. फेरि राजाने वाकुं अपने देशमेंसों निकास दियो. ये इतिहास जगन्नाथपुरीमें अभी तक परम्परासों प्रसिद्ध चल्यो आवे हे ॥४॥

एवं स्वयं ज्ञात्वा लोकज्ञापनार्थं शास्त्रं कथयन् बुद्धिसौकर्यार्थं प्रकरणत्रयम् आह इत्याकलय्य इति.

इत्याकलय्य सततं शास्त्रार्थः सर्वनिर्णयः ॥

श्रीभागवतरूपं च त्रयं वच्चि यथामति ॥५॥

सततम् इति मध्ये विरोधिज्ञानाभावः. शास्त्रार्थो गीतार्थः. सर्वस्यापि ज्ञानेदेः निर्णये द्वितीयः. असम्भावना-विपरीतभावनानिवृत्यर्थं द्वितीयम्. शास्त्रार्थस्य सङ्क्षेपरूपत्वाद् विस्तारार्थं भागवतरूपं तृतीयं प्रकरणम् यत्र भागवतं निरूप्यते. चकरात् मीमांसाद्वयभाव्यं, प्रकरणानि, भागवतटीका च गृहीता. त्रयम् एतद् उपदेशन्यायेन कथयामि ॥५॥

या प्रकार स्वयं ज्ञान प्राप्त करके लोगन् कों बतायेके अर्थ बोधसौकर्यार्थं तीन प्रकरणकी रचना करे हैं. समुद्दिवेमें सुगमता पडे याके अर्थ या निबन्धग्रन्थमें तीन प्रकरण रखें हैं. प्रथम शास्त्रार्थप्रकरण है; तामें श्रीगीताजीको अर्थ है. दूसरो सर्वनिर्णयप्रकरण है; तामें असम्भावना-विपरीतभावना दूर करिवेके अर्थ सब पदार्थनको निर्णय कियो है. तीसरो श्रीमद्भागवतरूप प्रकरण है; तामें श्रीभागवतके शास्त्रार्थ, स्कन्धार्थ, प्रकरणार्थ तथा अध्यायार्थ को निरूपण है ॥५॥

परिभाषाम् आह वेदान्ते इति साद्देन.

वेदान्ते च स्मृतौ ब्रह्मलिङ्गं भागवते तथा ॥

ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्दयते ॥

त्रितये त्रितयं वाच्यं क्रमेणैव मयात्र हि ॥६॥

निर्गलितवस्तुज्ञापकं लिङ्गं 'ब्रह्म' इत्यादिपदं तत्र-तत्र सिद्धं मयापि परमकाष्ठापन्नवस्तुबोधार्थं तत्त्वप्रकरणे वक्तव्यम् इति अर्थः ॥६॥

ग्रन्थके आदिमें सङ्केत कहे हैं श्रीमत्परमकाष्ठापन्न परमेश्वरको वेदान्तमें 'ब्रह्म' नाम प्रसिद्ध है. स्मृतिमें 'परमात्मा' नाम है. श्रीभागवतमें 'भगवान्' नाम है. या ग्रन्थके तीनों प्रकरणमें क्रमशः ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान् को निरूपण होयगो.

श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं हम भी या ही रीतिसों शास्त्रार्थप्रकरणमें 'ब्रह्म' कहेंगे, सर्वनिर्णयप्रकरणमें 'परमात्मा' कहेंगे, श्रीभागवतरूप प्रकरणमें 'भगवान्' नामसों वर्णन करेंगे ॥६॥

अस्मिन् शास्त्रे परिभाषाम् उक्त्वा प्रमाणम् आह वेदाः इति.

वेदाः श्रीकृष्णवाक्यानि व्याससूत्राणि चैव हि ॥

समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम् ॥७॥

शब्दएव प्रमाणम्. तत्रापि अलौकिकज्ञापकमेव. तत् स्वतःसिद्धप्रमाणभावं प्रमाणम्. वेदाः सर्वएव काण्डद्वयस्थिता अर्थवादादिरूपाअपि. स्मृतित्वेन कृष्णवाक्यानि वेदत्वेऽपि पृथग् उक्तानि. व्याससूत्राणि चकारात् जैमिनिसूत्राणि च. एवकारेण व्याससूत्राविरोधेनैव तदङ्गीकरणम्. हि युक्तश्च अयम् अर्थः, उपजीव्यत्वात्. व्यासस्य समाधिभाषा भागवतम्. तत्रापि यन् न लौकिकरीत्या वदति. यथा "अथोषस्युपवृत्तायाम्" (भाग.पुरा.१०।७०।१) इत्यादि. नापि परमतरीत्या "श्रुतं द्वैपायनमुखात्" (भाग.पुरा.६।१४।१) इत्यादि. यावत् समाधौ स्वयम् अनुभूय निरूपितं सा समाधिभाषा. एतच्चतुष्टयम् एकवाक्यतापन्नं प्रमाजनकम् इति अर्थः ॥७॥

या भगवत्सिद्धान्तके दृढ करिवे वारे चारि प्रमाण हैं. १. संहिता-ब्राह्मण सहित चारि वेद, २. श्रीगीताजीमें श्रीकृष्णके वचनामृत ३. श्रीवेदव्यासजीके रचित ब्रह्मसूत्र ४. श्रीमद्भागवतमें व्यासजीनें समाधि चढायकें अनुभव करिके जो वाणी कही है वो समाधिभाषा चतुर्थ प्रमाण है. इन चारों प्रमाणन् के मेलसों जो सिद्ध होय वाहीकों ठीक समुझनो. प्रत्यक्ष, अनुमान, एतिह्य तथा शब्द इन चारि प्रमाणन् में शब्द प्रमाण है सो सबन् सों बडो है. शब्दप्रमाणमें भी अलौकिक पदार्थको जतायवे वारो जो

शब्द हे सो ही मुख्य प्रमाण हे. एसो शब्द वेद ही हे. तासों वेद ही मुख्य प्रमाण हे. लोकसुं नाहीं जान्यो जाय एसो जो धर्म वाकुं जतायवे वारो वेद ही हे. वेदोक्त जो

धर्म तथा वेदोक्त जो ब्रह्म को स्वरूप हे वाकुं अन्य प्रमाण नाहिं जताय सके हें. वेदके वाक्यमें कोई स्थानमें जो अयोग्यता प्रतीत होवे हे सो जानवे वारेकी बुद्धिके दोषसों प्रतीत होवे हे. जेसे वेदमें लिख्यो हे “ग्रावाणः प्लवन्ते”, अर्थ : पाषाण तरते हें; इत्यादि वाक्यनकुं भी झूठे नहीं मानने. क्योंके वेद हे सो भूत-भविष्यत्-वर्तमानकालके जानिवे वारे इश्वरके वाक्य हें. तासों आगें होयवे वारे वृतान्तको भी वेदमें वर्णन कियो हे. रामावतारके समयमें समुद्रमें सेतु बंध्यो तब पाषाणके तिरवेको सबनको प्रत्यक्ष अनुभव भयो. या ही प्रकार वेदके अन्य वाक्यनकुं भी यथार्थ ही मानने. अपनी मलिन बुद्धिके अनुसार वेदके वाक्यनको उलटो अर्थ नहीं करनो. या सिद्धान्तमें अर्थवादकुं भी प्रमाण माने हें. गीताजीमें भी भगवान्के वाक्य हें तासों गीताजी वेदरूप ही हें. परन्तु अर्जुनके अधिकारानुसार कहे गये हें तासों स्मृतिरूप हें. “स्मृतेश्व” या व्याससूत्रमें स्मृतिकी प्रमाणता लिखी हे. विष्णुपुराणमें “वेदाः प्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणेषु न संशयः” या वाक्यमें पुराणनमें सब वेद स्थित हें ये बात लिखी हे. तासों सब पुराणनमें श्रीभागवत प्रमाण हे. तामें भी समाधिभाषा परम प्रमाण हे. श्रीभागवत हे सो भी भगवद्वाक्य हे तासों वेदरूप ही हे. परन्तु स्त्री-शूद्रादिकनको उद्धार करिवेके अर्थ पुराणमें गणना कियो गयो हे॥७॥

ननु चतुर्णा क्व उपयोगः ? एकेनैव चरितार्थत्वात् च इति आशङ्क्य आह उत्तरम् इति.

उत्तरं पूर्वसन्देहवारकं परिकीर्तितम्॥

अविरुद्धं तु यत्त्वस्य प्रमाणं तच्च नान्यथा॥

उत्तरोत्तरं पूर्व-पूर्वस्य सन्देहवारकं प्रकर्षेण कीर्तितम्. यथा “अपाणिपादो जवनो ग्रहीता” (श्वेता.उप.३।१९) इति अत्र किं प्राकृतपाणिपादरहितं ब्रह्म आहोस्त्रित् सामान्यनिषेधः? इति सन्देहे “सर्वतः पाणिपादान्तम्” (भग.गीता१३।१३) इत्यादि गीतावाक्यं निर्णयकम्. तथा गीतायां “नित्यः सर्वगतः स्थाणुः” (भग.गीता२।२४) “ममैवांशो जीवलोके (भग.गीता१५।७) इत्यादिषु सन्देहे सूत्रैः निर्णयः “उत्क्रान्तिगत्यागतीनाम्” (ब्रह्मसू.२।३।१९) इत्यादिभिः. तथा “जन्माद्यस्य यतः” (ब्रह्मसू.१।१।२) इति सन्देहे ‘अन्वयव्यतिरेकतः’ इति भागवतेन निर्णयः. एतदविरोधेनैव मन्वादीनां प्रामाण्यम् आह अविरुद्धम् इति.

चार प्रमाण मानिवेको कारण ये हे जो आगेको प्रमाण पहिले प्रमाणके सन्देह दूरि करिवे वारो हे. जेसे के वेदको सन्देह गीताजीसों दूर करनो. वेदमें लिखे हें “अपाणिपादो जवनो ग्रहीता” अर्थःब्रह्मके पांव नाहीं हें तोहु चले हे तथा हाथ नाहीं हें तोहु ग्रहण करले हे. या श्रुतिमें सन्देह होय हे के ब्रह्मके हाथ-पांव सर्वथा ही नहीं हें अथवा अलौकिक हाथ-पांव हें? अर्थात् लोकमें जेसे हाथ-पांव होय हें तेसे हाथ-पांव नाहीं हें तासों वेदमें बिना हाथ-पांव वारो कह्यो हे? या सन्देहको निर्णय श्रीगीताजीमें लिख्यो हे. “सर्वतः पाणिपादान्तं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्”. अर्थ : परमात्माके श्रीहस्त तथा चरणारविन्द सर्व ठिकाने विद्यमान हें. तथा हस्त-चरणनको अन्त भी सर्व ठिकाने वर्तमान हे. या गीतावाक्यसों स्पष्ट जान्यो जाय हे के परब्रह्म परमात्माके लौकिक हाथ-पांव नहीं हें. क्योंके लौकिक हाथ-पांव होय तो सर्व ठिकाने नहीं रहि सकें. तासों परमात्माके हस्त-चरण अलौकिक हें एसें समुद्दानो चहिये.

एसें ही जब गीताजीमें हु सन्देह होय ताको निर्णय व्याससूत्रनसों करनो. जेसे गीताजीमें लिख्यो हे “नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः” अर्थ : जीव नित्य, व्यापक, चेष्टा रहित, अचल तथा सनातन हे. तथा दूसरे ठिकाने गीताजीमें लिख्यो हे “ममैवांशो जीवलोके जीवभूत सनातनः” अर्थःजीवलोकमें जो जीव हे सो मेरो ही सनातन अंश हे. अब इन दोउ वाक्यनके देखिवेसों सन्देह होवे हे के जीवकु यदि व्यापक माने हें तो वो अंश नहीं होय सके हे. याको निर्णय “उत्क्रान्तिगत्या गतीनाम्”

(ब्रह्मसूत्र२।३।१९) या व्याससूत्रसों होवे हे. या सूत्रको अर्थः जीव उत्क्रमण करे हे अर्थात् या देहसों इन्द्रियनके छिद्रमें होयके निकसे हे तथा ये जीव गमन करे हे तथा आगमन करे हे. अर्थात् अन्य लोकन्८में जावे हे तथा अन्य लोकन्८सों यहां आवे हे. या सूत्रसों स्पष्ट जान्यो जाय हे के जीव अंश हे व्यापक नाहीं हे. जीवकु यदि व्यापक मानें तो जायवो-आयवो नाहीं बन सके. आकाश, जेसे, व्यापक हे तासों आकाशको जायवो-आयवो नाहीं मान्यो जाय हे. ओर गीतामें जीव व्यापक हे एसें जो लिख्यो हे सो ताको निर्णय आगे “व्यापकत्वं श्रुतिस्तास्य” या श्लोकमें लिखेंगे.

याही रीतिसों व्याससूत्रमें लिख्यो हे के “जन्माद्यस्य यतः” (ब्रह्मसू. १।१।२) अर्थः ब्रह्म हे सो जगत् की उत्पत्ति-स्थिति-नाशके करिवे वारो हे. यामें सन्देह होय हे के जगत् हे सो माया सहित ब्रह्मको बनायो भयो हे अथवा शुद्ध ब्रह्म ही या जगत् को कारण हे? शुद्ध ब्रह्म ही जगत् को बनायवे वारो हे ताको निर्णय “अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत् स्वात् सर्वत्र सर्वदा” (भाग. पुरा. २।९।३५) श्लोक सों होवे हे. अर्थः ब्रह्मको जगत् में अन्वय हे जेसे मृत्तिकाको घटमें अन्वय हे. अर्थात् जितने घडा हें उन सबमें मृत्तिका प्रविष्ट होय रही हे. घडाको कोई अंश एसो नाहीं हे जामें ब्रह्म प्रविष्ट नाहीं होय. अर्थात् सत्-चित्-आनन्दरूप ब्रह्म जगत् में जितने भी छोटे-बडे पदार्थ हें उन सबमें विद्यमान हे. जेसे घडामें “ये घडा हे” ये जो अनुभव हे याहीसों ‘अस्ति’ को (अर्थात् ब्रह्मके सत् धर्मको) अनुभव कहे हें. घडाकी ज्ञानमें आयवेकी ज्यो सामर्थ्य हे सो ब्रह्मको ‘चित्’ धर्म हे. याकों ‘भाति’ कहे हें. घडामें जो आछो हे सो आनन्द हे याहीसों ‘प्रियम्’ कहे हें. याही रीतिसों जगत् के सर्व पदार्थमें “पटोऽस्ति” “पटो भाति” “पटः प्रियम्” या प्रकारसों सच्चिदानन्दरूप ब्रह्मको अनुभव होवे हे तासों सर्वत्र ब्रह्म व्याप्त हे—ये ही ब्रह्मको जगत् में समन्वय हे. या ही प्रकार ब्रह्मको जगत् के साथ व्यतिरेक भी हे जेसे घटके साथ मृत्तिकाको व्यतिरेक हे. अर्थात् कुण्डा, बटेरा आदि जितने पदार्थ हें उनमें भी रहे हे तथा इन सब पदार्थन्८सों अधिक भी बहुत मृत्तिका हे—ये ही घटके साथ मृत्तिकाको व्यतिरेक हे. केवल अन्वय वारो होय सो कारण नाहीं होय हे (क्योंके) जगत् को भी जगत् में अन्वय हे; केवल व्यतिरेक वारो होय सो भी कारण नाहीं होय हे (क्योंके) खपुष्पको जगत् के साथ व्यतिरेक हे किन्तु अन्वय-व्यतिरेक ये दोनों जाके घटते होय वो कारण होवे हे. यासों निश्चय होय हे के शुद्ध ब्रह्म ही जगत् को कारण हे. “जन्माद्यस्य यतः” “शास्त्रयोनित्वात्” इन सूत्रन्८में भी शुद्ध ब्रह्म जगत् के प्रति कारण हे या बातको वर्णन हे. वेद, गीता, व्याससूत्र तथा भागवतकी समाधिभाषा इन चारि प्रमाणन्८सों मिलते भये ही मनुस्मृति आदि प्रमाण हें.

वेदादिना अविरुद्धमेव मन्वादिकं प्रमाणम्. क्रचित् संवादः क्रचिद् विरोधः इति उभयसम्भवे अप्रमाणमेव इति आह एतद्विरुद्धम् इति.

एतद्विरुद्धं यत् सर्वं न तन्मानं कथञ्चन।।८।।

जा शास्त्रमें इन चारों प्रमाणन्८सों कितनीक मिलती बातें होय तथा कितनीक बातें बिना मिलती भी होय वा शास्त्रकी पूर्णरीत्या प्रमाणता नाहीं हे. जहां तांई या जीवकु ब्रह्मको ज्ञान नाहीं होय तहां तांई इन चार प्रमाणन्८की एकवाक्यतानुसार ही निर्णय करनो. पूरो ब्रह्मज्ञान होय जाय ता पीछे तो वाणिमात्र प्रमाण हे. क्योंके ब्रह्मज्ञानीकुं जेसे सब पदार्थ भगवान्८के रूप दीखे हें तेसें ही सब शब्द भगवान्८के नाम दीखें हें।।८।।

एवं पूर्णज्ञानोदयावधि यद् ग्राह्यं प्रमाणत्वेन तन् निरूप्य तदनन्तरं यत् प्रमाणं तद् आह अथवा इति.

अथवा सर्वरूपत्वात् नामलीलाविभेदतः।।

विरुद्धांशपरित्यागात् प्रमाणं सर्वमेव हि।।९।।

वाङ्मात्रमेव प्रमाणम्, अर्थस्य भगवद्रूपत्वात् तदेव आह सर्वरूपत्वात् इति. रूपलीलावत् नामलीलाया विभेदानां वक्तव्यत्वात् नानाविधानि वाक्यानि प्रवृत्तानि. विरुद्धवाक्यत्वेनैव परस्परं भासमानेषु अविरोधप्रकारम् आह

विरुद्धांशपरित्यागाद् इति. विरुद्धांशपरित्यागो द्वेधा वक्तव्यः १भगवत्सामर्थ्येन अलौकिकप्रकारेण २भगवतः सर्वरूपत्वेन वा. अतो युक्तएव अविरोधः॥१॥

या तरेहसुं जहां ताईं पूर्ण ब्रह्मज्ञान नहीं होय तहां ताईं व्यवहारसिद्धिके अर्थ चार प्रमाण माननें. अब जहां एक ही भगवान्‌के स्वरूपको शास्त्रके कोई वाक्यमें शिव रूपसों वर्णन हे, कोई वाक्यमें विष्णु रूपसों वर्णन हे, कोई ठिकानें निराकार रूपसों वर्णन हे, कोई ठिकानें साकार रूपसों वर्णन हे—या प्रकारके अनेक विरोध शास्त्रमें दीखेवें आवे हें तहां भगवान्‌को अलौकिक सामर्थ्य जानिके अथवा भगवान् सर्वरूप होय सके हे एसें जानिके विरोध दूर करनो. भगवान्‌ने अपनी अलौकिक सामर्थ्यद्वारा छोटेसे अपने स्वरूपमें आखे ब्रह्माण्डके दर्शन यशोदा माताकुं कराये हें या ही प्रकारसुं कंस मामाजीकी सभामें भगवान्‌ने अपनी सर्वरूपता दिखाई हे. वहां मल्लनकुं वज्रसे दीखे हें, स्त्रियनकुं कामदेव दीखेहें, वसुदेव-देवकीकुं बालक दीखे हें, कंसकुं कालरूप दीखे हें. एसे ही अन्य ठिकानें भी समुझ लेनो. सत्य युगमें तो धर्ममें सन्देह ही नहीं होतो हतो॥१॥

उक्तमानचतुष्यविरोधे मन्वादिस्मृतीनाम् अप्रामाण्यमेव इति उक्तम्, तन् न युक्तम् “यद्वै किञ्चन मनुरवदत् तद् भेषजम्” (तैति.सं.२१२१०१२) इति श्रुतेः मन्वादीनाम् उक्तमानविरोधेऽपि प्रामाण्यस्य अवश्यवाच्यत्वाद् इति आह द्वापरादौ तु इति.

द्वापरादौ तु धर्मस्य द्विपरत्वाद् द्वयं प्रमा॥
विरुद्धवचनानां च निर्णयानां तथैव च॥१०॥

चोदनाविषयत्वेन अवश्यकर्तव्यताकृत्वेन अभिमतो अर्थो अत्र ‘धर्म’शब्देन उच्यते. तस्य द्वे श्रुति-स्मृती उभेऽपि परे प्रमाणिके यस्य तात्पुरत्वात् द्वयं श्रुतिः तत्संवादिनी असंवादिनी च मन्वादिस्मृतिश्च एतद् द्वयमपि प्रमा प्रमाणम् इति अर्थः.. यद्वा पूर्वोक्तधर्मस्य उक्तरीत्या द्विपरत्वात् श्रुतिसंवादिनि असंवादिन्यपि स्मार्ते धर्मे कर्तव्यताज्ञानं प्रमा इति अर्थः.. विरुद्धयोः अविरोधख्यापनार्थं साम्प्रतं लौकिकं दृष्टान्तम् आह विरुद्धवचनानाम् इति. यथा स्मृतिवाक्यानि परस्परं विरुद्धानि स्मृतिव्याख्यानकारैः अविरोधप्रकारेण निर्णयन्ते तथा निर्णयानामपि परस्परविरुद्धानां वैष्णवस्मार्तादिभेदेन अविरोध इति अर्थः॥१०॥

पूर्वमें कहे गये चारि प्रमाणनसों विरोध होयवे पर मनु आदि स्मृतिनकुं प्रमाण नाहीं माननी एसे जो कही सो ठीक नाहीं हे क्योंके श्रुतिमें ही कहो हे जो मनुने जो कछु कहो हे सो औषधकी भांति कल्याणकारी हे. तासुं उपर्युक्त चारि प्रमाणनसों विरोध होयवे पर भी मनु आदि स्मृतिनकुं प्रमाण माननी—एसे जो कोई कहे तो वाको समाधान द्वापरादौ तु या श्लोकसुं करत हें.

अर्थ : द्वापरके प्रारम्भमें धर्मके श्रुतिपरक तथा स्मृतिपरक या तरेहसुं द्विपरक हो जायवेसुं अवश्यकर्तव्य—शास्त्राज्ञारूप जो धर्म वाके विषयमें श्रुति तथा स्मृति दोउ प्रमाण हें. या ही प्रकारसुं परस्पर विरोधी वाक्य तथा निर्णय में दोउ प्रकारके वाक्य तथा दोउ प्रकारके निर्णय हु प्रामाणिक हें.

द्वापरयुगमें मनुष्यकी बुद्धि मलिन होयवेसों धर्ममें सन्देह भयो. तब श्रुति-स्मृति दो प्रमाणनके द्वारा धर्मको निर्णय भयो. या विषयमें मत्स्यपुराणके प्रमाण आवरणभङ्गमें दिखाये हें. अर्थात् द्वापरादिमें धर्मके ज्ञानमें श्रुति तथा स्मृति दोनों प्रमाण हें. आशय ये हे के द्वापरादिमें धर्मके द्विपरक होयवेसुं वा धर्मके विषयमें १.श्रुति तथा श्रुतिसंवादिनी एवं श्रुतिविसंवादिनी मनु आदि २.स्मृति ये दोउ प्रमाण हें. अथवा आगे कहे गये विधिरूप धर्मके श्रुतिपरक होयवेसुं श्रुतिसंवादी एवं श्रुतिविसंवादी दोउ प्रकारके स्मार्त धर्मनको अनुष्ठान करिवे योग्य होयवेको ज्ञान प्रामाणिक हे.

पूर्णज्ञानको उदय भयो न होय एसी अवस्थामें विरोधी वाक्यनमें अविरोध केसे सिद्ध करनो ताको प्रकार बतायवेके अर्थ लौकिक दृष्टान्त देत हें. जेसे स्मृतिवाक्यनको विरोध स्मृतिकार व्यवस्था करके निवृत्त करिदे हें एसे ही जिन निर्णयनमें परस्पर विरोध होय वहां भी वैष्णव-स्मार्तादि भेदसों व्यवस्था कर लेनी॥१०॥

अत्र प्रमाणचतुष्टये श्रुतिः सूत्राणि एकाः कोटि, गीता भागवतश्च अपरा स्पृष्टैव. तत्र उभयत्र प्रमेयभेदाभावे द्वयनिरूपणार्थं भेदे विरोधङ्गति कथम् एकवाक्यता ? इति आशङ्क्य द्वयं समर्थयितुम् आह यज्ञरूपः इति.

यज्ञरूपो हरिः पूर्वकाण्डे ब्रह्मतनुः परे॥

अवतारी हरिः कृष्णः श्रीभागवत ईर्यते॥११॥

“यः सर्वज्ञः सर्वशक्तिः” इति श्रुतेः, ज्ञानक्रियोभययुतः सर्वेषाम् अर्थः. तत्र क्रियायां प्रविष्टः क्रियारूपो यज्ञात्मा पूर्वकाण्डार्थः. ज्ञाने प्रविष्टो ज्ञानात्मा ब्रह्मरूपः उत्तरकाण्डार्थः. ‘तनु’शब्दः साकारब्रह्मप्रतिपादनाय. परे उत्तरस्मिन् काण्डे. क्रिया ज्ञानं च, द्वयं प्रकटीकृत्य यो अवतीर्णः कृष्णः स श्रीभागवते विशिष्टो निरूप्यते. अतः खण्डशो निरूपणं वेदे, भागवते तु समुदायेन निरूप्य तस्य लीला अनेकविधा निरूप्यन्तङ्गति एकार्थत्वेऽपि पृथग्वचनं युक्तम् इति अर्थः॥११॥

माने भये चार प्रमाणनमें दो विभाग हें. एक विभागमें तो वेद तथा सूत्र एवं दूसरे विभागमें श्रीभागवत तथा श्रीगीताजी. तहां वेदके दो विभाग हें: १. पूर्वकाण्ड तथा २. उत्तरकाण्ड. तहां पूर्वकाण्डोक्त क्रियामें भगवान्ननें प्रवेश कियो तब आप क्रियारूप होयके वेदमें ‘यज्ञ’नामसों प्रसिद्ध भये. तासों यज्ञरूपी भगवान् पूर्वकाण्डको अर्थ हें. एसे ही उत्तरकाण्ड जो उपनिषद् हे उनमें भगवान्ननें ज्ञानमें प्रवेश कियो तब आप ज्ञानरूप होयके वेदान्तमें ‘ब्रह्म’नामसों प्रसिद्ध भये. तासों ब्रह्मरूप भगवान् उत्तरकाण्डको अर्थ हे. श्रीगीताजी तथा श्रीभागवतजी में क्रिया तथा ज्ञान ये दोउ धर्म सहित जिनमें अपनो स्वरूप प्रकट कियो हे उन मूलरूप श्रीकृष्णचन्द्रको वर्णन हे॥११॥

वेदे पुराणे च क्वचिद् अन्यार्थप्रतिपादनम् आशङ्क्य तेषाम् अङ्गत्वम् इति अभिप्रायेण आह सूर्यादिरूपधृग् इति.

सूर्यादिरूपधृक् ब्रह्मकाण्डे ज्ञानाङ्गमीर्यते॥

पुराणेष्वपि सर्वेषु तत्तद्रूपो हरिस्तथा॥१२॥

ब्रह्मकाण्डे ज्ञानसिद्ध्यर्थम् उपासनाः निरूप्यन्ते. तत् चित्तशुद्धिद्वारैव इति केचित्, फलदानद्वारा माहात्म्यप्रतिपादनेन भक्तिद्वारा इति सिद्धान्तः. तथा पुराणोक्तानां दुर्गा-गणपतिप्रभूतीनां विशिष्टशेषत्वम् आवरणदेवतात्वेन. तथापि भिन्नार्थत्वम् आशङ्क्य तत्तद्रूपो हरिस्तथा इति उक्तम्. साधनरूपः फलरूपश्च स्वयमेव इति एकवाक्यता॥१२॥

वेद तथा पुराणन् में क्वचित् श्रीकृष्णसुं भिन्न एसे अन्य देवतानके उपास्य होयवेको प्रतिपादन देखिवेमें आवे हे एसी शाङ्का करिके वाको समाधान आगेके श्लोकसुं करे हें जो वे उपास्य देवता ज्ञानके अङ्गभूत हें.

श्लोकार्थ : सूर्यादिरूपधारी हरि ज्ञानकाण्डमें ज्ञानके अङ्ग कहे गये हें. वाही प्रकारासुं सभी पुराणनमें भी उन-उन पुराणनमें वर्णित विभिन्न उपास्य देवतानको रूप धारण करिवे वारे हरि ज्ञानके अङ्ग ही हें.

शाङ्का : उत्तरकाण्डमें यदि ज्ञानरूप भगवान्नको ही वर्णन हे तो सूर्य वायु आदि देवतानकी उपासना क्यों लिखी ? तासों जा स्थलमें उपासनानको वर्णन हे ता स्थलकुं उपासनाकाण्ड कहनो चैये.

समाधान : उपासनाकाण्ड जुदो नहीं हे. सूर्य, वायु आदिरूप भगवान्‌ने ही धारण करे हें. उन रूपन्‌की उपासना करिवे वारेन्कुं शास्त्रानुसार फल देके श्रीकृष्ण अपनो महात्म्य जतावे हें. माहात्म्य जानिवेसों आपके विषे भक्ति होय हे. भक्तिसों ज्ञान होवे हे. या प्रकारसों ब्रह्मज्ञान होयवेके अर्थ ही उपासनाको वर्णन हे. तासों उपासनाको उत्तरकाण्डमें ही अन्तर्भाव हे.

एसें ही पुराणन्‌में जो दुर्गा, गणपति आदि देवतान्‌की उपासना लिखी हे तथा ब्रह्मके समान जगत्‌की उत्पत्ति-रक्षा-संहार करिवेकी सामर्थ्य लिखी हे सो पूर्ण क्रिया-ज्ञानशक्तियुक्त जो मूलरूप परब्रह्म श्रीकृष्ण जिनको श्रीभागवतमें वर्णन किये हें तिनको महात्म्य उपासकन्कुं वाञ्छित फल देके जतावे हें. ओर माहात्म्यज्ञानके द्वारा मूलरूपकी भक्तिके बढायवे वारी हे तासों स्वयं भगवान्‌नेहीं दुर्गा गणपति इत्यादि अनेक साधनरूप धारण करे हें।।१२।।

अत्र अवान्तरनिर्णयं वक्तुं भक्तिमार्गं विशेषम् आह भजनं सर्वरूपेषुइति.

भजनं सर्वरूपेषु फलसिद्धूचै तथापि तु।।

आदिमूर्तिः कृष्ण एव सेव्यः सायुज्यकाम्यया।।१३।।

ज्ञानमार्गे न कोऽपि विशेषः क्वापि, सर्वस्वापि पूर्णब्रह्मत्वात्. वक्ष्यति च “अखण्डं कृष्णवत् सर्वम्” (तत्त्व.नि.सर्व.१८२) इति. भक्तिमार्गे तु न तथा. यथा भगवान् जगत् कृतवान् तथा स्वार्थं भक्तिमार्गमपि पृथक् कृतवान्. विभूतिरूपेषु साधनानि फलानि च व्यवस्थया कृतानि, पूर्णफलदानं च स्वस्मिन्. अतो भजनं मूलरूपएव कर्तव्यम्. “ब्रह्मविदान्नोति परम्” (तैत्ति.उप.२।१) इत्यत्र यत् सायुज्यं मुख्यतया निरूपितं तत् कामनायां सत्यां कृष्णएव सेव्यः. ‘कृष्ण’पदेन च बहिर्भजनमेव मुख्यम् इति निरूपितम्. “यो वेद निहितं गुहायाम्” (तैत्ति.उप.२।१) इति तु ज्ञानमार्गे।।१३।।

अब प्रमेयके सम्बन्धमें अवान्तर अर्थात् साधन तथा फल को निर्णय करिवेके अर्थ भक्तिमार्गरूप साधनमें वैशिष्ट्य अर्थात् भजनीयके स्वरूपके अनुसार फलमें तारतम्य होयवेको प्रतिपादन करत हें.

श्लोकार्थ : भगवान्‌के कोई भी रूपको भजन करिवेसुं फलकी सिद्धि होय हे तथापि सायुज्यरूप फलकी कामना जाकु होय वाकु तो आदिमूर्ति श्रीकृष्णकी ही सेवा करनी चहिये. एकादशास्कन्धमें मनुष्यन्‌के कल्याण करिवे वारे तीन मार्ग भगवान्‌ने उद्घवजी प्रति कहे हें: १.कर्ममार्ग २.ज्ञानमार्ग ३.भक्तिमार्ग. तहां कर्ममार्ग तो ज्ञानमार्गको सहायक हे. कल्याणके करिवे वारे तो दोई मार्ग हें : १.ज्ञानमार्ग तथा २.भक्तिमार्ग. तहां ज्ञानमार्गमें तो सब पदार्थं ब्रह्मरूप हें तासों कोई रूपकी ब्रह्म मानके उपासना करी जाय तो ब्रह्मभावरूप फल मिल जावे हे. ताहीसों वेदमें “अन्नं ब्रह्मेत्युपासीत” “मनो ब्रह्मेत्युपासीत” इत्यादि श्रुतिन्‌में अन्न, मन आदिकन्‌की भी ब्रह्मरूप मानिके उपासना लिखी हे. भक्तिमार्गमें तो जेसे अपनी क्रीडाके अर्थ भगवान्‌ने जगत् बनायो हे तेसें ही जीवन्कुं अपनी प्राप्ति करायवेके अर्थ भक्तिमार्ग प्रकट कीयो हे. या मार्गमें अन्य देवता श्रीकृष्णकी विभूतिरूप हें. कामनावरेन्कों ओर-ओर फलन्कुं दे हें ओर निष्काम होयके यदि विभूतिरूप देवतान्‌की भक्ति करी जाय तो कालान्तरमें पुरुषोत्तममें भक्ति होय हे ये बात ब्रह्मपुराणके अन्तमें मायानुकीर्तनाध्यायमें लिखी हे. अन्य देवतान्‌की भक्ति करिवेसों यज्ञमें भक्ति होय हे. बहोत यज्ञादिक करिवेसों अग्नि प्रसन्न होय हे तब सूर्यमें भक्ति होय हे. सूर्य जब प्रसन्न होय हे तब शिवमें भक्ति होवे हे. शिव जब प्रसन्न होवे हें तब केशव भगवान्‌में भक्ति होवे हे. केशव भगवान् जब प्रसन्न होवे हें तब पूर्णफलकी प्राप्ति होवे हे. पूर्ण फलदानको सामर्थ्य तो मूलरूपमें ही हे. गीताजीके “अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः” या श्लोकमें, भागवतके “कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्” या श्लोकमें ओर वेदमें गोपालतापनी उपनीषदमें श्रीकृष्णकी ही मूलरूपता लिखी हे. तथा ब्रह्मवैवर्तके ब्रह्मखण्डके द्वितीयाध्यायमें गोलोककी नित्यता लिखी हे. गोलोकमें योगिन्‌के ध्यानमें जो ज्योतिरूप आवे हे ताको वर्णन हे. योगिन्‌कुं आपको स्वरूप ज्योतिरूप ही भासमान होवे हे. वा ज्योतिमें प्रकृतिसों पर नित्य निर्गुण

आपको मेघश्याम स्वरूप विराजे हे. वो स्वरूप द्विभुज हे. कोटिकन्दर्प जेसो लावण्यवारो हे. वाही स्वरूप सों ब्रह्मा, विष्णु, सावित्रि, शिव, धर्म, सरस्वती, दुर्गा आदिकन्दकी उत्पत्ति लिखी हे—इत्यादि अनेक प्रमाण हें. या विषयको पण्डितकरभिन्दिपाल तथा प्रहस्त वादमें विस्तारसों वर्णन हे. मुख्य सायुज्यरूप फलकुं भगवान् ही देवे हें तासों सायुज्यके अर्थ आदिमूर्ति श्रीकृष्णहीकी सेवा करनी चहिये. मूल कारिकामें आये भये ‘कृष्ण’पदसुं ये प्रतिपादित होत हे के भक्तिमार्गमें कृष्णको बहिर्भजन ही मुख्य हे. तैत्तिरीयश्रुतिके “जो गुहामें स्थित परमतत्वकु जाने हे” इत्यादि वाक्यमें हृदयमें ब्रह्मको दर्शन अथवा अनुभव करिवेको जो प्रतिपादन भयो हे वो ज्ञानमार्गकी दृष्टिसुं समझनो.

ननु सर्वत्रैव तत्तदेवतासायुज्यं फलत्वेन श्रूयते. ततो विशेषः कः? इति चेत् तत्र आह निर्गुणा मुक्तिरस्माद्द्वि
इति.

निर्गुणा मुक्तिरस्माद्द्वि सगुणा साऽन्यसेवया॥

सायुज्यं मुक्तिः.. निर्गुणे सायुज्ये निर्गुणा भवति, सगुणे सगुणा. भगवद्यतिरिक्ताः सर्वएव कालपर्यन्तं सगुणाः.. कालोऽपि गुणानुरोधीति सगुणप्रायः.. अक्षरस्य प्रकारस्तु वक्तव्यः.. “मन्त्रिष्ठं निर्गुणं स्मृतम्” (भाग.पुरा.११।२५॥२४) इति “तं भजन् निर्गुणो भवेद्” (भाग.पुरा.१०।८८।५) इति वाक्यात् कृष्णसायुज्यमेव निर्गुणा मुक्तिः..

श्रुतिमें विभिन्न देवतान्की उपासनासों उन-उन देवतान्में सायुज्यरूप फलकी प्राप्ति होयवेकी बात लिखि हे. तब कृष्णसेवासों सायुज्य प्राप्त करिवेमें पूर्वोक्त उपासनान्सों प्राप्त होयवेवारे सायुज्यकी अपेक्षा कहा वैशिष्ट्य हे जाके कारण कृष्णकी ही उपासना करनी चहिये, अन्य देवतान्की नहीं? या प्रश्नको उत्तर आगेके श्लोकसुं देत हें.

श्लोकार्थःकृष्णकी सेवा करिवेसों निर्गुण मुक्तिकी प्राप्ति होवे हे ओर कृष्णसुं भिन्न अन्य देवतान्की सेवा करिवेसों सगुण मुक्ति प्राप्त होवे हे.

सायुज्यको स्वरूप श्रुतिमें लिख्यो हे. यजुर्वेद ब्रह्मवल्लीमें “सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता” इति. अर्थःकृष्णसेवा करिवे वारो जो भक्त हे सो परब्रह्म श्रीकृष्णके साथ सर्व कामन्को भोग करे हे. बाहिर प्रकट भये जो श्रीकृष्णचन्द्र हें उनहीकी सेवासों सायुज्यफलकी प्राप्ति होय हे. अन्य देवतान्की उपासनासों भी उन देवतान्के साथ सायुज्य मुक्ति होय हे. वो सायुज्य मुक्ति, परन्तु, सगुणमुक्ति हे. क्योंके कालादि सब देवता सगुण हें परि श्रीकृष्णचन्द्र तो निर्गुण हें. श्रीकृष्णचन्द्रको ज्ञान भी निर्गुण हे तथा श्रीकृष्णचन्द्रके भजन करिवे वारो भी निर्गुण हो जावे हे हे बात एकादशस्त्रन्धमें लिखी हे “मन्त्रिष्ठं निर्गुणं स्मृतम्” अर्थःभगवन्मन्त्रिष्ठं ज्ञान निर्गुण कह्यो गयो हे. तथा दशमस्त्रन्धमें “तं भजन् निर्गुणो भवेत्” अर्थःश्रीकृष्णको भजन् करिवेसुं भक्त निर्गुण होय जावे हे.

अक्षर-ज्ञानमार्गयोः एकत्वाद् द्वयम् एकेन समाहतम्.

ज्ञानेऽपि सात्त्विकी मुक्तिः जीवन्मुक्तिरथापि वा॥

ज्ञानेऽपि सात्त्विकी मुक्तिः इति. ज्ञानमार्गः सगुणएव, “सत्त्वात् सञ्जायते ज्ञानम्” (भग.गीता१४।१७) इति वाक्यात्. अतएव ज्ञानिनो भीताः संसाराद् विस्त्रिता भवन्ति.

एवं ज्ञानमार्गे प्रवृत्तस्य सगुणत्वम् उपपाद्य ज्ञानसम्पत्तियुक्तस्य न सगुणत्वम् इति आशङ्कय आह जीवन्मुक्तिरथापि वा इति. वा इति अनादरे. मुख्यपक्षे तु “समासेनैव कौन्तेय” (भग.गीता१८।५०) इति वाक्यसन्दर्भे ब्रह्मभावानन्तरं भक्तिः भवतीति गुणातीतएव प्रवेशः, “ते प्राप्नुवन्ति मामेव” (भग.गीता१२।४) इति वाक्यात्. तदभावे केवलं जीवन्मुक्ता भवन्तीति सनकादितुल्याः सगुणैव. इममेव विशेषं वक्तुं भगवन् आह “सर्वभूतहिते रताः”

(भग.गीता१२।४) इति. अतएव शुकादीनां भक्तिमार्गोपदेशनद्वारा सर्वभूतहिताचरणम्. यस्तु ज्ञानमार्गे प्रवृत्तः प्राप्तज्ञानः कृष्णसेवार्थं यतते, तत्रिष्ठां परित्यज्य, स महान् इति आह ज्ञानी चेद् भजते कृष्णम् इति.

ज्ञानी चेद्गजते कृष्णं तस्मान्नास्त्वयधिकः परः॥१४॥

यद्यपि ज्ञानमार्गेऽपि विषयो निर्गुणः तथापि मार्गः सगुणः इति भक्तिमार्गस्य उत्कर्षः. क्रियाशक्तेः इन्द्रियाणांज्यं वैफल्यं ज्ञानमार्गं. तस्माद् भक्तिमार्गानुसारेण कृष्णाएव सर्वेषां सेव्यः इति निरूपितम्॥१४॥

अक्षरब्रह्म यद्यपि निर्गुण हे तथापि ज्ञानसों जेसें सात्त्विकी मुक्ति होय हे एसें अक्षरब्रह्मोपासनासों भी सात्त्विकी मुक्ति होय हे. क्योंके “सत्वात् सञ्जायते ज्ञानम्” या वाक्यमें सतोगुणसों ज्ञानकी उत्पत्ति लिखी हे. तासों ज्ञान सगुण हे. ज्ञानसों सगुण मुक्ति ही होवे हे तामें प्रमाण श्रीभागवतमें “कैवल्यं सात्त्विकं ज्ञानम्” अर्थःसात्त्विक ज्ञान ही मोक्ष हे. “त्रैगुण्यविषया वेदाः” अर्थःवेदोक्तज्ञानभी सगुण हे. तासों वेदके लिखे ज्ञानसों भी सगुणमुक्ति होवे हे. तासों ज्ञानमार्गमें ज्ञानद्वारा जीव कदाचित् जीवन्मुक्त होय तो भी सगुण ही रहे हे, जेसें सनकादिक. यदि ये निर्गुण होते तो जय-विजयकुं शाप नहीं देते. ज्ञानद्वारा ब्रह्मभाव जिनकों सिद्ध भयो होय ता पीछे कृष्णकी जब भक्ति होय तब निर्गुण होय हे, जेसें शुकदेवजी निर्गुण जीवन्मुक्त हें

ताहीसों सब जीवन्के हितकारी हें. गीताजीमें “ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहितेरताः” या श्लोकमें सर्वभूतहितकारी ज्ञानी भक्त मोकुं प्राप्त होय हे ये लिखी हे. तासों पहले ज्ञानमार्गकी रीतिसों ब्रह्मज्ञानी होयके पीछे ज्ञाननिष्ठा छोडके परब्रह्म श्रीकृष्णकी भक्ति करे हे. हस्त-पादादि कर्मेन्द्रियनकों तथा नेत्र-श्रवणादि ज्ञानेन्द्रियनकों प्रभुसेवा करिके जो सफल करे हे वो ज्ञानीभक्त सर्व ज्ञानीनमें श्रेष्ठ हे. तासों ज्ञानमार्गमेंभी ज्ञानीकों भक्तिद्वारा ही निर्गुणकी प्राप्ति होय हे. ज्ञानमार्ग पहले सगुण हे ओर भक्तिमार्ग तो प्रथमहीसों निर्गुण हे तासों भक्तिमार्गको उत्कर्ष जानिके भक्तिमार्गकी रीतिसों कृष्णकी ही सेवा सबनकुं करनी चहिये॥१४॥

ननु एवं सति कथं न सर्वे सेवन्ते इति आशङ्कायाम् आह बुद्धावतारे इति.

बुद्धावतारे त्वधुना हरौ तद्वशगाः सुराः॥

नानामतानि विप्रेषु भूत्वा कुर्वन्ति मोहनम्॥

‘तु’शब्दः शङ्कां वारयति. कलिकालः स्वभावतः सर्वोत्कृष्टः. स्वल्पसाधनेऽपि महाफलप्रदः. अतो दैत्यव्यामोहार्थं भगवान् बुद्धो अवतीर्णः, सर्वप्रमाणमूलभूतं वेदं दूषितवान्. ततः पुराणादिमार्गदूषणार्थं तद्वशगाः सुराअपि तथा अनिषिद्धवेषम् आश्रित्य ब्राह्मणानां बुद्धिनाशार्थं तेष्वेव अवतीर्य मोहनार्थं नानामतानि कुर्वन्ति, काणाद-न्याय-मायावादादिरूपाणि. वाक्पेशलत्वात् मोहनरूपत्वम्॥

शङ्का : जो कृष्णसेवा ही सर्वोत्तम हे तो सब ही मनुष्य कृष्णसेवा क्यों नहीं करे हें? ताको उत्तर “बुद्धावतारे” या श्लोकमें लिखे हें.

गीताजीमें दैवजीव तथा आसुरजीव दोय प्रकरके जीव लिखे हें. जब आसुर जीव अर्थात् दैत्यलोग श्रेष्ठमार्गमें प्रवृत्त होयवे लगे तब उनकुं मोह करायवेके अर्थ भगवान्नें बुद्धावतार धारणा कियो तथा धर्मके मूल जो वेद हें तिनकी निन्दा करी एवं देवतानकुं भी आज्ञा दीनी जो तुम भी पुराणनकी निन्दा करिके दैत्यनकुं मोह करावो. तब देवतान्नें भी भगवान्की प्रेरणाके आधीन होयकें, ऋषिनके कुलमें जन्म लेकें, निन्द्यवेष धारण करिके वैशेषिक, न्याय, मायावाद, चार्वाक, निरीश्वर साङ्ख्यच आदि खोटे शास्त्र बनाये. इन शास्त्रनमें एसी बातें लिखी हें के जिनके सुनिवे-पढिवेसों जीवकी बुद्धि बिगड़ जाय तथा उनके ही मतमें लग जावें.

ननु तेषां शास्त्राणां मुक्तिः फलं तथैव तत्र-तत्र प्रतीयते तत्कथं मोहनफलम्? इति चेत्, तत्र आह यथाकथञ्चिद् इति.

यथाकथञ्चित् कृष्णस्य भजनं वारयन्ति हि॥१५॥

वैदिके मार्गे जागरुके पौराणिके च तेनैव मार्गेण स्वयम् ऋषित्वं देवत्वं च प्राप्ताः किमिति अन्यथा वेदविरोधेन शास्त्रम् अवादिषुः यदि मुक्तिरेव सम्पाद्या स्वात् अतः सिद्धे राजमार्गेऽपि पुनः स्वयम् अतिक्लेशेन यत् शास्त्राणि कृतवन्तः अतो ज्ञायते मोहार्थमेव शास्त्रकरणम्. नापि तथाकरणे भगवतो विसम्मतिः, भगवतैव तथा ज्ञापनात्. “त्वञ्च रुद्र महाबाहो मोहशास्त्राणि कारय, अतथ्यानि वितथ्यानि दर्शयस्व महाभुज, प्रकाशं कुरु चात्मानम् अप्रकाशञ्च मां कुरु” इति वाराहवचनं ब्रह्माण्डोक्तं तथापरम् “अमोहाय गुणा विष्णोरापारः चिच्छरीरता, निर्दोषत्वं तारतम्यं मुक्तानामपि चोच्यते, एतद्विरुद्धं यत्सर्वं तन्मोहायेति निश्चयः”. उक्तं पद्मपुराणे च शैवएव शिखेन तु, यदुक्तं हरिणा पश्चाद् उमाये प्राह तद्गुरः. “त्वामाराध्य तथा शम्भो ग्रहीष्यामि वरं सदा, द्वापरादौ युगे भूत्वा कलया मानुषादिषु, स्वागमैः कल्पितैस्ववञ्च जनान्मद्विमुखान् कुरु, माञ्च गोपय येन स्वात् सृष्टिरोत्तरोत्तरा” (पद्मपुरा.६।७२।१०६-१०७). एतदभिसन्धाय आह यथाकथञ्चित् कृष्णस्य इति. ते हि अलौकिकद्रष्टारः “एवं मायावादाद्यनुसारेण शास्त्रे कृते लोका भगवद्विर्मुखा भविष्यन्ति” इति तथा कृतवन्तः इति अर्थः॥१५॥

शड्का : न्याय, मायावाद आदि शास्त्र यदि जीवनकुं धोखा देवेकुं ही बने हें तो उन शास्त्रन्में मोक्ष फलको क्यों वर्णन कियो हे?

समाधान : मोक्षफलके देवे वारे चारों वेद तथा अष्टादश पुराण विद्यमान हें ही फिर उनकुं छोडके अपनी बुद्धिके अनुसार नये-नये मोक्षसाधन उन शास्त्रन्में बताये हें तासों मालूम होय हे के वे शास्त्र अवश्य जीवकुं मोह करायवेवारे हें. प्रथम मोहक शास्त्र बनायवेकी आज्ञा शिवजीके प्रति भगवाननें करी हे. हे बात वाराहपुराणमें रुद्रगीतामें लीखी हे. वहांको श्लोकः “त्वञ्च रुद्र महाबाहो मोहशास्त्राणि कारय”. अर्थः हे रुद्र तुम मोहक शास्त्र बनावो. तथा पद्मपुराणमें लिख्यो हे “स्वागमैः कल्पितैस्ववञ्च जनान् मद्विमुखान् कुरु”. अर्थः भगवान् आज्ञा करे हें हे रुद्र तुम अपने बनाये शास्त्रनके द्वारा मनुष्यनकुं मोसों विमुख करो. तब शिवजीनें भगवानकी आज्ञा मानिके मोहक शास्त्र बनाये, तथा अपनी शक्तिसों ऋषिनकी बुद्धि बिगाड़के ऋषिनके द्वारा भी मोहक शास्त्र बनाये. ताको प्रमाण पद्मपुराणके उत्तरखण्डमें लिख्यो हे. वहांके श्लोकः “मच्छक्त्या वेशितैविप्रैः सम्प्रोक्तानि ततः परम्” इत्यादि श्लोक पुरुषोत्तमजी कृत श्लोक १६ की व्याख्यामें लिखे हें. यासों हे निश्चय भयो के उन् अलौकिक दृष्टा ऋषिलोगन्में मायावादादिकनके अनुसरण करिवेवारे भ्रामक शास्त्र बनाय जासुं उन भ्रामक वादनको अनुसरण करिके लोग भगवद्विर्मुख होय जांय तथा श्रीकृष्णकी सेवासों हटि जावें॥१५॥

ननु मुग्धाशचेत् संसारेऽपि भ्रान्ताङ्गव पशुपुत्रादिषु कथं न मुग्धा जायन्ते? तत्र आह अयमेव महामोह इति.

अयमेव महामोहो हीदमेव प्रतारणम्।।

यत् कृष्णं न भजेत् प्राज्ञः शास्त्राभ्यासपरः कृती॥॥

नहि अल्पार्थे तेषां प्रवृत्तिः. महामोहस्तु अयमेव यत् क्रियाज्ञानशक्तिसद्वावेऽपि कृष्णं न भजेत्. परप्रतारणञ्च एतदेव. यतः तं महान्तं मन्वाना अभजन्तं दृष्ट्वा स्वयमपि न भजन्ते. प्राज्ञः इति ज्ञानशक्तिप्राबल्यम्. शास्त्राभ्यासपरः इति मिथ्याज्ञानाभिनिवेशः, साधनसम्पत्तिः वा. कृती इति क्रियासामर्थ्यम्.

यहां शड्का होय हे के यदि मोहक शास्त्रनसुं लोग मोहमें परि गये होंय तो संसारी अन्य लोगनकी भाँति पशु-पुत्रादिमें मोहित क्यों नाहिं होत हें? तहां मोहको स्वरूप बताते भये समाधान करत हें.

जो ये ही बड़ो मोह हे तथा ये ही बड़ी ठगाय हे जो ज्ञानवान् होयकें, शास्त्रकुं पढकें, सेवा करिवेकी सामर्थ्य पायकें हु श्रीकृष्णकी सेवा नाहीं करे हें. परप्रतारणा भी ये ही हे क्योंके लोग मोहक शास्त्रकारनकुं महान् समुझत हें ओर जब देखत हें के ये महान् लोग भगवान्को भजन नाहिं करत हें तब स्वयं भी भगवद्गजनसों विमुख ह्वे जात हें.

एवं शास्त्रकरणाद् बहवो विमुखा जाता इति निरूप्य, तथापि भगवत्सेवकोक्तप्रकारेण प्रवृत्ताइति सत्फलमेव भविष्यति इति आशङ्क्य आह तेषां कर्मवशानां हि इति.

तेषां कर्मवशानां हि भवएव फलिष्यति ॥१६॥

न हि शास्त्रकर्तारो बलात् कञ्जन प्रवर्तयन्ति, नापि “महान्त एते” इति कश्चित् तत्र प्रवर्तते किन्तु दुरदृष्टवशात् तदुक्ते अर्थे श्रद्धा जायते. अन्यथा सर्वसम्मत वेदं परित्यज्य तत्र कथं प्रवृत्ताः स्युः? अतः प्रारब्धवाशादेव तत्र प्रवृत्ताः संसारमेव फलम् आभूतसम्प्लवं प्राप्स्यन्ति, “सृष्टिरेषोत्तरोत्तरा” (पद्मपुरा.६।२६३।१०७) इति वाक्यात् भगवद्विरोधाचरणेतु नरकेऽपि पातः. भवः संसारो दुःखात्मकः फलिष्यति ॥१६॥

उपर्युक्त प्रकारसुं मोहक शास्त्रनकी रचना भई तथा उनको अनुसरण करिवेसुं अनेक लोग भगवद्विरुद्ध भये एसो निरूपण करिकें अब शङ्का करत हें जो मोहकशास्त्र बनायवे वारे भगवान्के सेवक हें. भगवान्के सेवकनके बताये भये मार्गानुसार प्रवृत्त होयवे वारेनकुं सत्फलकी प्राप्ति क्यों नहीं होयगी? या शङ्काको समाधान तेषां कर्मवशानाम् श्लोकसुं करत हें.

यद्यपि मोहकशास्त्र बनायवेवारे ऋषिलोग मनुष्यनकुं जबरदस्तीसों अपने-अपने बनाये शास्त्रनमें प्रवृत्त नहीं करे हें. लोग मोहकशास्त्र बनायवेवारेनकुं महान् समुझके उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तके पालनमें प्रवृत्त होवे हें एसो भी नहीं हे. वस्तुतः तो अपने अशुभ कर्मनके फलरूप अदृष्टके कारण लोगनकी मोहकशास्त्रनके रचयितानके कथनमें श्रद्धा उत्पन्न होवे हे अन्यथा सर्वसम्मत वेदकुं छोडिके लोग इन मोहक शास्त्रनमें कैसे प्रवृत्त होते यासुं स्पष्ट हे के मन्दभागी जीव अपुने मनसोंही खोटे शास्त्रमें प्रवृत्त हो जावे हें. वे जीव अपने कर्मानुसार सदा संसारचक्रमें ही भ्रमते रहे हें यदि उनको आचरण भगद्विरोधी न होय. भगद्विरोधी आचरण करिवे पर तो उनको नरकमें हु पात सम्भव हे ही ॥१६॥

ननु तानि शास्त्राणि ज्ञानप्रतिपादकानि, क्वचित् कर्मप्रतिपादकानि चित्तशुद्धयर्थ, क्वचित् भक्तिप्रतिपादकानि च कथं मोहप्रतिपादकानि? इति आशङ्क्य आह ज्ञाननिष्ठा इति साद्वेन.

ज्ञाननिष्ठा तदा ज्ञेया सर्वज्ञो हि यदा भवेत् ॥

कर्मनिष्ठा तदा ज्ञेया यदा चित्तं प्रसीदति ॥

भक्तिनिष्ठा तदा ज्ञेया यदा कृष्णः प्रसीदति ॥१७॥

यत् “तत्वमस्यादिवाक्येनैव अपरोक्षं ज्ञानम् उत्पद्यते” इति ज्ञानदुर्बलान् व्यामोहयितुम् उक्तवन्तः तत् न ज्ञानम्. तथा सति सर्वज्ञता स्यात्. “यस्मिन् विदिते सर्वमिदं विदितम्” इति, कर्मणीव ज्ञानेऽपि निर्दर्शनानाम् उक्ततत्वात् यथा कारीर्याम् अश्वमूलणादिकम्, यथा वा दीर्घसत्रारम्भे अपूपदाहः तथा ज्ञानेऽपि सर्वज्ञत्वम्. तेजोऽपि निर्दर्शनम्. तस्मान् न एतज्ज्ञानम् इति ज्ञातव्यमिति एतदर्थम् आह सर्वज्ञो हि यदा भवेद् इति. नापि तदुक्तप्रकारेण कर्माणि फलं प्रयच्छन्ति, ‘यज् धातोः भगवत्पूजार्थस्य स्वरूपज्ञानेन वृथाकरणात्, यज्ञादीनाम् अनित्यत्वभावनाच्च, श्रुत्युक्तप्रकारेण पदर्थज्ञाननिराकरणाच्च. अतो यागादिकमपि ज्ञानशेषतया उपदिशन्ति, ज्ञानपर्यन्तज्य तत्करणम् इति आहुः. भावनाकल्पितज्य विषयस्य आहुः. अतो भगवदर्थं भगवान् न सेव्यतइति न कृष्णः तुष्यति. यदि सा भक्तिः भवेत्, कृष्णः तुष्येत्. “भक्त्यैव तुष्टिमभ्येति” इति वाक्यात्. तस्माद् उक्तप्रकारो व्यर्थः इति अर्थः ॥१७॥

शाइका : जिन मायावादादि शास्त्रनकुं भ्रमकरिवे वारे कहो हो उन शास्त्रनमें कहुं तो ब्रह्मज्ञानको वर्णन हे, कहुं चित्तशुद्धिके अर्थ कर्मको वर्णन हे ओर कहीं भक्तिको वर्णन हे तो वे शास्त्र मोह करायवे वारे हें ये बात केसें बनि सके हे?

श्लोकार्थ : ज्ञाननिष्ठा तब समझनी चहिये जब व्यक्ति सर्वज्ञ होय जावे तथा कर्मनिष्ठा तब समुझनी चहिये जब चित्तमें निर्मलता-प्रसन्नता आय जावे ओर भक्तिनिष्ठा तब समुझनी चहिये जब भगवान् कृष्ण प्रसन्न होय जावे.

उत्तर : उन शास्त्रनमें जहां ज्ञानको वर्णन हे वहां साधन बिना “तत्त्वमसि”, गुरुशिष्यकेप्रति उपदेश देत हे, “हे शिष्य तु ब्रह्म हे” इत्यादि वाक्यके उपदेश मात्रासों साक्षात् ब्रह्मज्ञान होय जाय हे या रीतिसों कहिके ज्ञान रहित भोले मनुष्यनकुं धोखा दियो जाय हे जो “तू ब्रह्म हे”. ऐसें कहिवेहीसों शिष्यकुं साक्षात् ब्रह्मज्ञान हो जातो होतो तब तो उपदेश होतेही शिष्यकों जगत्के सब पदार्थनको ज्ञान हो जानो चहिये. अर्थात् यहां बैठो भयोही सब ठिकानेके भूत-भविष्यत् वृत्तान्त कहि दे सकतो होतो क्योंके सर्वज्ञ हो जानो ब्रह्मज्ञानीकी निसानी हे. “यस्मिन् विदिते सर्वमिदं विज्ञातं भवति”. अर्थात्, ब्रह्मज्ञान होयवेसों सब पदार्थको ज्ञान हो जाय हे ये बात लिखी हे. ऐसेंही जहां कर्मको वर्णन कियो हे वहां वेदमें लिखे अग्रिहोत्र आदि कर्मनकुं अनित्य बताये हें. ओर यज्ञ हे सो तो भगवान्की पूजा हे या बातकु भी नहीं जाने हें. क्योंके ‘यज्ञ’शब्द ‘यज्’ धातुसों बन्यो हे. ‘यज्’ धातुको देवपूजा अर्थ हे. ओर भगवान्के अङ्गरूप वायु अग्नि आदि देवतानकी वेदमें सांची प्रशंसा जो अर्थवादमें लिखी हे ताकु झूठी समझे हें. ओर भगवान्कुं कर्मके फल देवेवारे नहीं माने हें. अपने मनके अपूर्वकुं फलदाता कहे हें. तासों उनकी बताई रीतिसों कर्म करिवेसों लोभ ही बढे हे, चित्त शुद्ध नहीं होय हे. ओर कर्मकी निष्ठा भई तो तबही जाननो जब चित्त शुद्ध होय के प्रसन्न होय।।१७।।

ननु मुख्यफलाभावे तदुक्तप्रकारेण गौणं फलं भविष्यति इति आशङ्क्य आह निष्ठाभावे इति.

निष्ठाभावे फलं तस्मान्नास्त्वयेवेति विनिश्चयः।।

निष्ठा च साधनैरेव न मनोरथवार्तया।।१८।।

न हि महागृहारम्भे सामिकृते ततः किञ्चित् फलम् अस्ति. न वा नदीतरणार्थं प्रवृत्तो हस्तमात्रावशिष्टेऽपि निमग्नः पारगमनं फलं प्राप्नोति. ननु अनेन अग्रे निष्ठैव भविष्यति इति चेत् तत्र आह निष्ठा च साधनैरेव इति. वेदोक्तैरेव ननु प्रतिष्ठार्थं व्याख्यान-मनोरथवार्तया।।१८।।

मायावादादि मोहक शास्त्रनमें प्रतिपादित ज्ञान-कर्म-भक्तिको तत्तदुक्तप्रकारसों अभ्यास करिवेसों मुख्य फल क्वचिद् प्राप्त न होय परि गौण फल तो प्राप्त होय सके के नहीं? या शाइकाको निराकरण करत हें.

निष्ठाके अभावमें ज्ञान, कर्म अथवा भक्ति को फल प्राप्त नहीं होवे हे ये बात सुनिश्चित हे. अपरञ्च निष्ठा भी वेदादिमें कहे भये साधननके द्वारा ही होत हे, केवल इच्छामात्रसों अथवा वेदादिमें कहे भये साधननके काल्पनिक व्याख्यानसो नाहीं होत हे.

याही रीत जहां उन मोहक शास्त्रनमें भक्तिको वर्णन हे वहां भगवान्की भक्तिकुं मुख्य फल नहीं बतावे हें. केवल ज्ञान होयवेके अर्थ भक्ति करनी अर्थात् जहां ताईं ज्ञान नहीं होय तहां ताईं भक्ति करनो ज्ञान भये पाणे भक्तिको कळु काम नहीं ऐसो प्रतिपादन करत हें. यासुं प्रतीत होवे हे के मायावादादि मोहक शास्त्रनमें बताये प्रकारसुं शुद्ध परब्रह्मकी भक्ति नहीं होय सके हे. भावना कल्पित अर्थात् अपनी बुद्धि कल्पित भगवान्के स्वरूपहीकी भक्ति होय हे. मायावादादि मोहक शास्त्र या रीतिसों माने हें. उनके बताये भक्ति भागमें भगवान्की प्रसन्नताके अर्थ भगवान्की सेवा नहीं करी जावे हे किन्तु ज्ञानके अर्थ करी जावे हे. वा भक्तिसों भगवान् नहीं प्रसन्न होवे हें. ओर भक्ति वाहीसों कहनों जासों भगवान् प्रसन्न होंय. क्योंके, “भक्त्यैव तुष्टि मध्येति”. अर्थःभगवान् भक्तिसोंही प्रसन्न होय हें. भक्तिनिष्ठा तब ही भई जाननी जब कृष्ण प्रसन्न होंय. मोहक

शास्त्रकी रीतिसों वर्ताव करेसों ज्ञान-भक्ति-कर्म इन तीनों मेंसों कछु भी पूरो सिद्ध नहीं होय हे. ओर पूरो सिद्ध भये बिना फल नहीं होय हे. जेसे बड़े मकानको निर्माण प्रारम्भ कियो जाय ओर यदि वाकु आधो बनायके ही छोड़ दियो जाय तो वेसे आधे-अधूरे मकानसों कछु प्रयोजन सिद्ध नहीं होत हे. जेसे नदी तरवे वारो सब नहीं तरके हाथभरकी छेटीसों ढूब जाय तो वाको परिश्रम वृथा ही जावे हे. यासों हे निचोड़ भयो जो वेदशास्त्रके अनुसार साधन करेसों ही ज्ञान-भक्ति-कर्म पूरे सिद्ध होवे हें. प्रतिष्ठाके अर्थ वेदशास्त्रनके मनचाहे अर्थ करिवेसों कछु नहीं होय हे॥१८॥

ननु त्रितयं किञ्चित्-किञ्चिद् अनुष्ठितं फलं साधयिष्यति इति आशङ्क्य आह स्वाधिकारानुसारेण इति.
स्वाधिकारानुसारेण मार्गस् त्रेधा फलाय हि॥

मार्गगताएव ज्ञानादयः फलदाः, यथा गोदोहनादयः कर्मगताएव. तथा तत्त्वाधनादिसहिताएव ते ज्ञानादयः फलदा. अन्यथा प्रकरणभेदेन तन्निरूपणं न स्वात्.

ततः किम्? अत आह अधुना इति.

अधुना ह्याधिकारास्तु सर्वाएव गताः कलौ॥

कृष्णश्चेत् सेव्यते भक्त्या कलिस्तस्य फलाय हि॥१९॥

कालवशादेव अधिकाराः निवृत्ताः न साधनैः कर्तुं शक्यन्ते. ननु एवं सति मुख्यभक्तिमार्गेऽपि समः समाधिः इति चेत्, तत्र आह कृष्णश्चेत् सेव्यते इति. अवतीर्णो भगवान् सर्वमुक्त्यर्थमिति प्रमेयबलनैव फलिष्यतीति स्वाधिकाराभावेऽपि ततः फलं भविष्यति इति अर्थः. चेद् इति सेवायां दुर्लभत्वम् उक्तम्. भक्त्या न तु विहितत्वेन. कलिस्तस्य इति. कालस्तु अनुगुणाएव इति अर्थः. “कलौ तद् हरिकीर्तनाद्” (भाग.पुरा.१२।३।५२) इति वाक्यात्. अतो अधिकारेण अनधिकारेण वा कृष्णभजनं कर्तव्यम् इति सिद्धम्॥१९॥

शाङ्कावेदादिकनकी रीति छोड़के मनमाने थोड़-थोड़े ज्ञान-कर्म-भक्ति करिवेसों भी कछु फलसिद्धि नहीं होय हे ये आगेके श्लोकसुं कहे हें.

जेसे वेदमें “चमसेनापः प्रणयेद् गोदोहनेन पशुकामस्य” या श्रुतिमें पशुकी कामनावालो मनुष्य गायकी दोहनीमें जल लावे एसी विधि हे. दोहनीमें जल लायवेकी क्रिया यज्ञके अन्तर्गत करिवेसुं ही वो क्रिया यजमानकों पशुरूप फल देवे हे. अब या बातकुं सुनिके कोई पुरुष वेदविधिकुं छोड़के केवल गायकी दोहनीसुं जल लायके पशुकी प्राप्ति चाहे तो कभी नहीं होय. किन्तु वेदरीतिके अनुसार यज्ञमें जा ठिकाने जल लायवो लिख्यो हे वा ठिकाने गायकी दोहनीसों जल लावे तब ही पशुकी प्राप्ति होय. एसे ही अपने अधिकारके अनुसार वेदशास्त्रमें लिखे प्रमाण साङ्गोपाङ्ग करे भये ही ज्ञान-कर्म-भक्तिमार्ग अपने-अपने फलके देवे वारे हें. यदि एसो नहीं होतो तो ज्ञान-कर्म-भक्तिमार्गनको निरूपण शास्त्रमें पृथक्-पृथक् नहीं कियो होतो॥

अभीके सब ही मनुष्य कालके विपरीतपनेसुं पीढ़ी-दर-पीढ़ीसों सदाचारहीन हो रहे हें तथा निषिद्धाचारमें तत्पर हें. तासों ज्ञान कर्मादिकके अधिकारी नहीं हें. क्योंके “आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः” अर्थःआचारहीन मनुष्यकुं वेद भी नहीं पवित्र करे हें. तासों भक्ति करके जो पुरुष कृष्णकी सेवा करे हे वाकुं कलियुग फलदायक हे. “कलौ तद् हरिकीर्तनात्” एसे श्रीभागवतमें लिख्यो हे. अर्थःकलियुगमें कीर्तनादिक भक्तिसों भगवत्प्राप्ति होय हे.

यद्यपि जेसें ज्ञानके तथा कर्मके अधिकारी अभीके जीव नहीं हें तेसें भक्तिके भी अधिकारी अभीके जीव नहीं हें तथापि अनधिकारी जीवनकों भी कृपाकरिके मुक्त करिवेके अर्थ परब्रह्म पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण प्रकट भये हें ओर अपने प्रमेयबलसों अर्थात् अपनी अद्भुत सामर्थ्यसों अनधिकारी जीव ब्रजके पशु-पक्षी गोप-गोपी आदिकनकुं भी मुक्ति दीनी. तासों अधिकारी होय अथवा अनधिकारी होय, कृष्णभक्ति सब जीवनकुं अवश्य करनी चहिये ये बात सिद्ध भई॥१९॥

‘बुद्धावतारे’ इत्यादि कारिकासुं लेके यहां तक जो कछु कह्यो गयो तासुं जो सिद्ध भयो सो अधुना या कारिकासुं कहत हें.

श्लोकार्थ : कलियुगके कारण सभी अधिकार समाप्त हो गये हें. अतएव यदि भक्ति पूर्वक श्रीकृष्णकी सेवा करिवेमें आवे तो ये कलियुग श्रीकृष्णकी सेवा करिवारे भक्तनकुं फलदायक होयगो.

अत्र सर्वेषां प्रमाणानाम् एकवाक्यताम् आह सर्वेषम् इति.

सर्वेषां वेदवाक्यानां भगवद्वचसामपि॥

श्रौतोर्थो ह्यमेव स्माद् अन्यः कल्प्यो मतान्तरैः॥२०॥

श्रौतः अभिधया निरूपितः. अन्यः तत्त्वमतानुसारेण उक्तः. कल्प्यो न वाचनिकः॥२०॥

अब आगेके श्लोकमें उपर्युक्त अर्थके सम्बन्धमें वेद, गीता, व्याससूत्र तथा श्रीमद्भागवत की एकवाक्यताको उपादन करत हें.

सब वेदवाक्यनको तथा गीताजीके भगवद्वाक्यनको अभिधावृत्तिके द्वारा मुख्य ये ही अर्थ होय हे. अन्य प्रकारको जो अर्थ हे सो अपने-अपने मतके आग्रहसों कियो अर्थ हे॥२०॥

ननु अत्र द्वयं निरुक्तं, वेदा भगवद्वाक्यानि च. तत्र एकेनैव शास्त्रार्थनिष्पत्तौ अन्यवैयर्थ्यम् इति आशङ्क्य आह कृष्णवाक्यानुसारेण इति.

कृष्णवाक्यानुसारेण शास्त्रार्थं ये वदन्ति हि॥

ते हि भागवताः प्रोक्ताः शुद्धास्ते ब्रह्मवादिनः॥२१॥

शास्त्रार्थम् वेदार्थम्. भगवद्वाक्यानि वाक्यशेषरूपाणि सन्देहे निर्णयकानि-एवं वक्तारो भागवत भगवत्सम्बन्धिनो विद्वांसः. अनेन भक्ता इति उक्तम्. तएव च शुद्धाः कर्मिणः, यथोक्तकर्मज्ञानात्. तएव च ज्ञानिनो ब्रह्मवादिनः, यथोक्तब्रह्मस्वीकारात्॥२१॥

उपर कारिकामें वेद तथा भगवद्वाक्यरूप गीता एसे दो प्रमाणनको कथन भयो हे. इन दो प्रमाणनमेंसुं कोई एक भी प्रमाणसों शास्त्रको अर्थ सिद्ध होय जायेगो तब दूसरो प्रमाण व्यर्थ बनेगो-एसी आशङ्काकुं दूर करिवेकुं ‘कृष्णवाक्यानुसारेण’ सुं समाधान करत हें.

श्रीभागवत एकादशस्त्रन्धमें भगवान् आज्ञा करे हें “इत्यस्या हृदयं लोके नान्यो मद्वेद कश्चन” अर्थःया वेदवाणीको अभिप्राय में ही जानुं हुं आर कोई नहीं जाने हे. तासों गीता-भागवतमें लिखे भये भगवान्के वाक्यनके अनुसार वेदको अर्थ जे पण्डित करे हें वे ही भागवत हें, परम भगवदीय हें. वे ही यथार्थ कर्मके स्वरूपकुं जाने हें जे विद्वान् गीता-भागवतानुसार वेदोक्त कर्म करे हें. तथा वे ही पूर्ण ब्रह्मज्ञानी हें जे विद्वान् गीता-भागवतानुसार वेदोक्त ब्रह्मस्वरूपकुं जाने हें॥२१॥

ननु एतदुभयं पूर्वमेव वर्तते इति किं भगवतो ग्रन्थकरणेन ? इति आशङ्क्य आह एतन्मतम् इति.

एतन्मतमविज्ञाय सात्त्विका अपि वै हरिम्॥

मतान्तरैर्न सेवन्ते तदर्थं ह्येष उद्यमः॥२२॥

मतम् सिद्धान्तः. सात्त्विका इति स्वरूपयोग्यता, अभजने येषां शास्त्रान्तरमेव प्रयोजकं, न तु स्वभावः, तेषां मतनिराकरणेन प्रवृत्तिः सम्पाद्यते इति अर्थः॥२२॥

श्रीवल्लभाचार्यजी आज्ञा करे हें के जब श्रीभागवत तथा श्रीगीता पहलेसोंही विद्यमान हें फिर हमारे ग्रन्थ करिवेकी आवश्यकता नहीं हती तथापि अनेक मतन्‌के प्रचार होयवेसों सन्देहमें पड़के दैवी जीव हु हरिकी सेवासों बहिर्मुख होय रहे हें तासों उन दैवी जीवन्‌के सन्देह दूर करिके भगवान्‌की सेवामें प्रवृत्ति करायवेके अर्थ तथा गीता-भागवतको यथार्थ अभिप्राय समझायवेके अर्थ या ग्रन्थको प्रारम्भ करें हें।

कारिकामें प्रयुक्त 'सात्विका:' पदको अभिप्राय ये हे जो जिन् जीवन्‌में भगवद्गजन करिवेकी योग्यता हे वे यदि भगवद्गजन नाहीं करत हें तो वाको कारण उनको स्वभाव नहीं होयके अन्य मोहक शास्त्र मात्र कारण हें। एसेमें यदि उन मोहक शास्त्रन्‌को मतन्‌को निराकरण कर दियो जाय तो भगवद्गजनमें उन जीवन्‌की प्रवृत्ति स्वतः सम्पादित हो जायगी ॥२२॥
